मधु कलश

सन् १६३५ ३६ मे

लिखित

बच्चन की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

१ आकुल अतर—इकहत्तर छोटे बडे गीतों का सग्रह

२ एकात सगीत—

एक सौ गीतों का सग्रह

३ निशा निमत्रण—

एक सौ गीतों का सग्रह

४ मधुबाला—

लबी कविताओं का सग्रह

५ मधुशाला—

रुबाइयों का सग्रह

६ खैयाम की मधुशाला—

रुबाइयात उमर खैयाम का अनुवाद

७ तेरा हार—

प्रारभिक कविताओं का प्रथम सग्रह

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अत में देखिए।

मधु कलश

बच्चन

ग्रंथ-संख्या—१००

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भंडार

लीडर प्रेस,

इलाहाबाद

इस पुस्तक के पहले दो संस्करण सुषमा निकुंज, प्रयाग से प्रकाशित हुए थे

पहला संस्करण जुलाई—१९३७

दूसरा संस्करण नवंबर—१९३९

तीसरा संस्करण फरवरी—१९४३

मूल्य १॥)

मुद्रक

कृष्णाराम मेहता

लीडर प्रेस इलाहाबाद।

विज्ञापन

बच्चन के 'मधु कलश' का तीसरा संस्करण प्रकाशित करते समय हम बड़े आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। प्राय देखा जाता है कि प्रगतिशील लेखकों की—हम इस शब्द को किसी विशेष अर्थ में नहीं प्रयुक्त कर रहे हैं—नई कृतियों में रुचि रखने वाले उनकी पुरानी कृतियों को भूलते जाते हैं, परंतु बच्चन के पाठक उनकी पुरानी रचनाओं में भी उतनी ही रुचि रखते हैं जितनी उनकी नवीनतम कृतियों में। बच्चन की पिछली रचनाओं के खपते हुए संस्करण इसके प्रमाण हैं।

बच्चन की रचनाओं में 'मधु कलश' का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह उनकी दो प्रसिद्ध रचनाओं—मधुबाला और निशा निमंत्रण—के बीच एक कड़ी है। 'मधु कलश' की प्रथम पंक्तियाँ हैं—'है आज भरा जीवन मुझमें, है आज भरी मेरी गागर'। उसकी अंतिम पंक्तियाँ हैं 'आज उपवन से हमारे मिट रहा है गुल हजारा'।

हाँ, इस संस्करण में एक नवीन बात यह हुई है कि हम इसमें बच्चन की एक रचना 'गुल हजारा' और जोड़ रहे हैं। यह संभवत 'मधु कलश' के प्रथम प्रकाशन के पश्चात लिखी गई थी परंतु शैली

आदि से यह ' मधु कलश ' काल के ही अतर्गत आती है। यह १६३७ की ' सुधा ' म छपी भा थी। कविता पढकर पाठक स्वय अनुभव करेंगे कि ' मधु कलश ' का अत इसी कविता से होना चाहिए था। ' मृत्यु शैया पर पडे अति रुग्ण की अतिम हँसी सी ' मे कवि का सकेत सभवत अपनी पूर्व पत्नी की ओर है जिनकी बीमारी की अवस्था में यह पुस्तक लिखी गइ थी और जिन्हे उनकी मृत्यु के पश्चात यह समर्पित हुइ।

और बाता म यह पिछले सस्करण का पुनमुद्रण मात्र है।

कागज और छपाई का दाम बहुत अधिक बढ जाने स पुस्तक के मूल्य मे हम कुछ वृद्धि करना पडी है। हमे विश्वास है कि इस स्वल्प मूल्य-वृद्धि के कारण बच्चन की पुस्तकों की लोक प्रियता में कोई कमी न आएगी।

—प्रकाशक

यह

मधु कलश

दिवगता देवी श्यामा

की

स्मृति में

विशाल विश्व-वृक्ष की डाल मे

चिरकाल तक

बँधा रहे

सूची

मधु कलश

मधु कलश

है आज भरा जीवन मुझमें,

है आज भरी मेरी गागर !

(१)

सर म जीवन है, इससे ही
वह लहराता रहता प्रतिपल,
सरिता में जीवन, इससे ही
वह गाती जाती है 'कल-कल',

निर्झर में जीवन, इससे ही
वह 'झर झर' झरता रहता है

जीवन ही देता रहता है
नद को द्रुत गति, नद को हलचल,

लहरें उठतीं, लहरे गिरतीं,
लहरें बढतीं, लहरे हटतीं,
जीवन से चचल हैं लहरें,
जीवन से अस्थिर है सागर !

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

(२)

नभ का जीवन प्रति रजनी में
कर उठता है जगमग जगमग,
जलकर तारक-दल-दीपों में,
सज नीलम का प्रासाद सुभग,

दिन में पट रग बिरगे औ'
सतरगे बनकर तन ढकता,

प्रात -साय कलरव करता
बन चचल-पर दल के दल खग,

प्रावृट में विद्युत में हँसता,
रोता बादल की बूँदों में,
करती है व्यक्त धरा जीवन,
होकर तृणमय, होकर उर्वर !

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

(३)

मारुत का जीवन बहता है
गिरि-कानन पर करता 'हर-हर',
तरुवर-लतिकाओं का जीवन
कर उठता है 'मरमर-मरमर',

पल्लव का, पर बन अंबर में
उड़ जाने की इच्छा करता,

शाखाओं का, झूमा करता
दाएँ बाएँ, नीचे ऊपर,

तृण शिशु, जिनका हो पाया है
अबतक मुखरित कल कंठ नहीं,
दिखला देते अपना जीवन
फड़का अपने अनजान अधर।

है आज भरा जीवन मुझमे,
है आज भरी मेरी गागर!

(४)

जल में, थल मे, नभमडल मे
है जीवन की धारा बहती,
सस्रृति के कूल किनारों को
प्रतिक्षण सिंचित करती रहती,

इस धारा के तट पर हा है
मेरी यह सुदर सी बस्ती—

सुदर सा नगरी—जिसको है
सब दुनिया मधुशाला कहती,

मैं हूँ इस नगरी की रानी,
इसकी देवी, इसकी प्रतिमा,
इससे मेरा सबध अटल,
इससे मेरा सबध अमर !

है आज भरा जीवन मुझमे,
है आज भरी मेरी गागर !

(५)

पल ड्योढी पर, पल आँगन में,
पल छज्जों और झरोखों पर
मैं क्यों न रहूँ जब आने क।
मेरे मधु के प्रेमी सुदर,

जब खोज किसीकी हों करते
दृग दूर क्षितिज पर ओर सभी,

किस विधि से मैं गभीर बनूँ,
अपने नयनों को नीचे कर,

मरु की नीरवता का अभिनय
मैं कर ही कैसे सकती हूँ,
जब निष्कारण ही आज रहे
मुस्कान हँसी के निर्झर झर!

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर!

(६)

मैं थिर होकर कैसे बैठूँ ,
जब हो उठते हैं पाँव चपल ,
मैं मौन खडा किस भाँति रहूँ ,
जब हैं बज उठते पग-पायल ,

जब मधुघट के आधार बने,
कर क्यों न झुकें, झूमे, घूमें,

किस भाँति रहूँ मैं मुख मूँदे,
जब उड-उड जाता है अचल,

मैं नाच रही मदिरालय में
मैं और नहीं कुछ कर सकती,
है आज गया कोई मेरे
तन में, प्राणों में, यौवन भर !

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

(७)

भावों से ऐसा पूर्ण हृदय
बातें भी मेरी साधारण
उर से उठ कंठों तक आते
आते बन जाती हैं गायन,

जब लौट प्रतिध्वनि आती है,
अचरज होता है तब मुझको—

हो आज गई मधु-सौरभ से
क्या जड़ दीवारें भी चेतन !

गुंजित करती मदिरालय को
लाचार यही मैं करने को,
अपनेसे ही फूटा पड़ता
मुझमें लय-ताल-बँधा मधु स्वर !

है आज भरा जीवन मुझमे,
है आज भरी मेरी गागर !

(८)

गिरि में न समा उन्माद सका
तब झरनों में बाहर आया,
झरनों की ही थी मादकता
जिसको सर-सरिता ने पाया,

जब सँभल सका उल्लास नहीं
नदियों से, अबुधि को आई,

अबुधि की उमडी मस्ती को
नीरद ने भू पर बरसाया,

मलयानिल को निज सौरभ दे
मधुवन कुछ हल्का हो जाता,
मैं कर देती मदिरा वितरित
जाता उर से कुछ भार उतर !

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर !

(६)

तन की क्षण भंगुर नौका पर
चढकर, हे यात्री, तू आया,
तूने नानाविधि नगरों को
होगा जीवन-तट पर पाया,

जड शुष्क उन्हे देखा होगा
रक्षित सीमित प्राचीरों से,

इस नगरा में पाइ होगी
अपने उर की स्वप्निल छाया,

है शुष्क सत्य यदि उपयोगी
तो सुखदायक है स्वप्न सरस,
सुख भी जीवन का अंश अमर,
मत जग से डर, कुछ देर ठहर।

है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर!

(१०)

जीवन में दोनों आते हैं
मिट्टी के पल, सोने के क्षण,
जीवन से दोनों जाते है
पाने के पल, खोने के क्षण

हम जिस क्षण में जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करने को,

हँसने के क्षण पाकर हँसते,
रोते हैं पा रोने के क्षण,

विस्मृति की आइ है वेला,
कर, पांथ, न इसकी अवहेला,
आ, भूलें हास रुदन दोनों
मधुमय होकर दो-चार पहर!

है आज भरा जीवन मुझमे,
है आज भरी मेरी गागर!

कवि की वासना

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

(१)

सृष्टि के प्रारम्भ में
मैंने उषा के गाल चूमे,
बाल रवि के भाग्यवाले
दीप्त भाल विशाल चूमे,

प्रथम संध्या के अरुण दृग
चूमकर मैंने सुलाए,

तारिका-कलि से सुसज्जित
नव निशा के बाल चूमे,

वायु के रसमय अधर
पहले सके छू होठ मेरे,
मृत्तिका की पुतलियों से
आज क्या अभिसार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्‌गार मेरा !

(२)

विगत-बाल्य वसुधरा के
उच्च तुग उरोज उभरे,
तरु उगे हरिताभ पट धर
काम के ध्वज मत्त फहरे,

चपल उच्छृखल करों ने
जो किया उत्पात उस दिन,

है हथेली पर लिखा वह,
पढ भले ही विश्व हहरे।

प्यास वारिधि से बुझाकर
भी रहा अतृप्त हूँ मैं,
कामिनी के कुच-कलश से
आज कैसा प्यार मेरा!

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उदगार मेरा!

(३)

इद्र धनु पर शीश धरकर
बादलों की सेज सुख पर
सो चुका हूँ नींद भर मैं
चचला को बाहु मे भर,

दीप रवि शशि तारकों ने
बाहरी कुछ केलि देखी,

देख, पर, पाया न कोई
स्वप्न वे सुकुमार, सुदर,

जो पलक पर कर निछावर
थी गई मधु यामिनी वह
यह समाधि बनी हुई है,
यह न शयनागार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

(४)

आज मिट्टी से घिरा हूँ,
पर उमगें हैं पुरानी,
सोमरस जो पी चुका है
आज उसके हाथ पानी,

होठ प्यालों पर झुके तो
थे विवश इसके लिए वे

प्यास का व्रत धार बैठा
आज है मन, किंतु, मानी।

मैं नहीं हूँ देह धर्मों से
बँधा, जग, जान ले तू,
तन विकृत हो जाय, लेकिन
मन सदा अविकार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

(५)

निष्परिश्रम छोड जिनको
मोह लेता विश्व भर को,
मानवों को, सुर-असुर को,
वृद्ध ब्रह्मा, विष्णु, हर को,

भंग कर देता तपस्या
सिद्ध, ऋषि, मुनि सत्तमों की,

वे सुमन के बाण मैंने
ही दिए थे पंचशर को,

शक्ति रख कुछ पास अपने
ही दिया यह दान मैंने,
जीत पाएगा इन्हीं से
आज क्या मन मार मेरा!

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

(६)

प्राण प्राणों से सके मिल
किस तरह, दीवार है तन,
काल है घडियाँ न गिनता,
बेड़ियों का शब्द झन झन,

वेद लोकाचार प्रहरी
ताकते हर चाल मेरी,

बद्ध इस वातावरण में
क्या करे अभिलाष यौवन !

अल्पतम इच्छा यहाँ
मेरी बनी बदी पड़ी है,
विश्व क्रीड़ास्थल नहीं रे,
विश्व कारागार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा !

(७)

थी तृषा जब शीत जल की
खा लिए अंगार मैंने,
चीथड़ों से उस दिवस था
कर लिया शृंगार मैंने,

राजसी पट पहनने की
जब हुई इच्छा प्रबल थी,

चाह सचय में लुटाया
था भरा भडार मैंने,

वासना जब तीव्रतम थी
बन गया था सयमी मैं,
है रही मेरी क्षुधा ही
सर्वदा आहार मेरा।

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा!

(८)

कल छिड़ी होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं, जा रहेगी
विश्व में मेरी निशानी ?

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक ?

वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी ?

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

सुषमा

(१)

किसी समय ज्ञानी, कवि, प्रेमी,
तीनो एक ठौर आए,
सुषमा ही से थे सबने
अपने मन-वाञ्छित फल पाए।

सुषमा ही उपास्य देवी थीं
तीनो की त्रय कालों में,

पर विचार सुषमा पर सबने
अलग-अलग ही ठहराए।

(८)

कल छिड़ी होगी खतम कल
प्रेम की मेरी कहानी,
कौन हूँ मैं, जो रहेगी
विश्व में मेरी निशानी ?

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अब तक ?

वृद्ध जग को क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी ?

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा !

कह रहा जग वासनामय
हो रहा उद्गार मेरा।

सुषमा

(१)

किसी समय ज्ञानी, कवि, प्रेमी,
तीना एक ठौर आए,
सुषमा ही से थे सबने
अपने मन-वाञ्छित फल पाए।

सुषमा ही उपास्य देवी थी
तीनों की त्रय कालों मे,

पर विचार सुषमा पर सबने
अलग-अलग ही ठहराए!

(२)

'वह सुषमा थी नहीं, न उसने
तुझको अगर प्रकाश दिया।'
'वह सुषमा थी नहीं, न उसने
तुझे अगर उन्मत्त किया।'

ज्ञानी औ' कवि की वाणी सुन
प्रेमी आहें भर बोला,

'सुषमा न थी, नहीं यदि उसने
आत्मसात् कर मुझे लिया।'

(३)

एक व्यक्ति साधारण उनकी
बातें सुनने को आया,
मौन हुए जब तीनों तब वह
उच्चस्वर से चिल्लाया।

'मूर्ते, मैंने अब तक उसको
कभी नहीं सुषमा समझा,

जिसके निकट पहुँचते ही,
आनद नहीं मैंने पाया!'

(४)

एक बिंदु पर अब तीनों के
मिल जाने की आशा थी,
क्या अंतिम ही सबसे अच्छी
सुषमा की परिभाषा थी?

कवि की निराशा

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्या गान मेरा!

(१)

मुसकरा कठिनाइयों—
आपत्तियों का दूर टाला,
धैर्य धरकर सकटों में
खूब अपने को सँभाला,

किंतु जब पर्वत पड़ा आ
शीश पर मैं सह न पाया,

जब उठा हो भार जीवन
तब लगाया होठ प्याला,

व्यर्थ कर दिन रात निंदा
विश्व ने जिह्वा थकाई,
था बहाना एक मन—
बहलाव का मधुपान मेरा।

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्या गान मेरा?

(२)

है चमकता जो सितारा
वह प्रभा से हीन होगा,
बढ़ रहा जो चाँद नभ में
एक दिन फिर क्षीण होगा,

क्षीण होगा पूर्ण फिर से,
म्लान फिर द्युतिमान होगा,

भ्रात इस आवर्त में ही
विश्व-जीवन लीन होगा

किस विजय पर ढोल पीटूँ,
किस पराजय पर धुनूँ सिर ?
रात दिन-सा जड़ नियम से
बद्ध पतनोत्थान मेरा।

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा ?

(३)

खिल मृदुल-सुकुमार कलिका
पुष्प मुरझाने न पाए,
लहलहाते उपवनों में
वायु पतझड़ की न आए,

कोकिला सकरुण स्वरों मे
मत विदा माँगे द्रुमों से,

हाँ न झूठे स्वप्न कवि के
जो गए युग युग सजाए—

यह न हो तो किन सुखों का
गीत मुखरित कठ से हो ?
विश्व पूरा कर सका है
कौन-सा अरमान मेरा ?

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा ?

(४)

बद्ध विश्व अपूर्ण में मैं,
पुण्य मुझमें, पाप मुझमें,
हर बुराई, हर भलाई की
मिलेगी छाप मुझमें,

पात्र अपयश का अकेला
यदि, प्रकट अन्याय जग का,

साथ दोषों के गुणों की
भी बनी है माप मुझमें

मैं जगत के वास्ते
अभिशाप हूँ, वरदान भी हूँ।
छा गया अभिशाप, लेकिन
छिप गया वरदान मेरा !

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा ?

(५)

देख अलका पाद लुंठित
गर्व के कारण न फूला,
कर सका उपहास 'लय का
किंतु अपनेको न भूला,

स्वर्ग को आशीष देकर
भूमि को मैं शिर झुकाऊँ ?

जब उमड़ता सिंधु उर में
क्या खुशी पाकर बबूला ?

एक मेरे लघु चरण से
नप गया वैभव धरा का !
कर सकेगी दीन जगती
किस तरह सम्मान मेरा ?

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा ?

(६)

तेज था विश्वास का उर में
कभी, अब तो अँधेरा,
आज तो सदेह शका ने
लिया है डाल डेरा,

पथ बताए कौन, सब तो
हैं भटकते भूलते से,

मच रहा है शोर, 'मत है,
ठीक मेरा, ठीक मेरा!'

हर दिशा की ओर बढता,
लौटता, फिर दौडता है,
है किधर मजिल न पाया
जान जीवन यान मेरा।

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा?

(७)

एक मधुवन-बीच विचरित
दूसरा पग स्थित मरुस्थल,
एक में जीवन-सुधा-रस,
दूसरे कर मे हलाहल,

सुन रहा नदन परी का
गान, क्रदन भिक्षुणी का,

देखता हूँ तम सघन की
गोद में मैं ज्योति निमल,

आज आशा, कल निराशा,
फिर हृदय में शून्य सा कुछ,
कुछ विरोधी कण समूहों से
हुआ निर्माण मेरा।

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा !

(८)

कल्पना-पथ अनुसरण कर
मैं नियति के गृह पधारा,
आँख मूँदे लिख रही थी
एक पुस्तक वह उदारा,

'यह कथा तेरी,' कहा उसने
तथा वह पुस्तिका दी,

खोलते ही पृष्ठ पहला
काँप उठा तन प्राण सारा,

'भूमिका' पढकर पड़ा रो
यह गगन स्वप्नाभिलाषी,
'आज-कल' अध्याय दो में
पूर्ण लघु आख्यान मरा !

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा ?

(६)

एक दिन मैंने लिया था
काल से कुछ श्वास का ऋण,
आज भी उसको चुकाता,
ले रहा वह क्रूर गिन गिन,

व्याज मे मुझसे उगाहा
है हृदय का गान उसने,

किंतु होने मे उऋण अब
शेष केवल और दो दिन,

फिर पड़ूँगा तान चादर
सर्वथा निश्चित होकर,
भूलकर जग ने किया किस
किस तरह अपमान मेरा।

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्या गान मेरा ?

(१०)

क्यों लगा रजकण सँजोने
त्याग कुंदन का डला मैं ?
क्यों फिरा कटक वनों में
छोड पथ फूला फला मैं ?

हास विद्युत का हटा क्यों
अश्रु धारा में बरसता ?

था सुधा में जब निमज्जित
क्यों गरल पीने चला मैं ?

बूझ दुनिया यह पहेली
जान कुछ मुझको सकेगी,
हो चुकेगा किंतु इसके
पूर्व ही अवसान मेरा !

पूछता जग, है निराशा से
भरा क्यों गान मेरा ?

री हरियाली !

छा रही कण-कण अवनि का,

छा, सजनि, मेरा हृदय भी !

(१)

गुबदों, छत छप्परों पर,
मार्ग मे, मैदान में तू,
सित्त सरिता के तटा पर,
खेत में, खलिहान मे तू,

फूस मिट्टी से बनाए
खेतिहरा के भोपडों पर,

ढाल, द्रुह, पहाड़ियां पर
निम्न उच्चस्थान मे तू,

डालता सब पर सदा कवि
निज हृदय की स्नेह छाया,
किंतु लज्जित आज तुझको
देख उसका उर सदय भी।

छा रही कण कण अवनि का,
छा, सजनि, मेरा हृदय भी।

(२)

जड जगत के साथ चेतन
का रही रख ध्यान तू है,
दे रही कृश पशु दलों को
आज तृण का दान तू है,

नारियों के पट, पुरुष की
पाग अपने रग रँगती,

भर रही नव युवतियां के
कठ में कल गान तू है,

रँग हथेली लाल उनकी
झूलनों मे है झुलाती,
विश्व सुख मे भूलता कवि
आज निज दुख का समय भी।

छा रही कण कण अवनि का,
छा, सजनि, मेरा हृदय भी!

(३)

आज हर्षित नभ धरणि पर
देख अपनी श्याम छाया,
बादलों ने आज अपने
आँसुओं का मोल पाया,

भूलकर मारुत मलय गिरि
लोटता तृण सेज पर है

कौन कहता घास हिलती,
आज भू तल मुसकराया !

कौन खुश होता नहीं यह
देख मरकत राशि बिखरी,
हो सभी के हेतु सुखकर,
हो अगर मेरा उदय भी।

छा रही कण कण अवनि का,
छा, सजनि, मेरा हृदय भी !

(८)

मानता, कुछ मास रवि ने
था धरातल को तपाया,
सोख रस रज के कणों का
अग्नि कण सा था बनाया,

दिन फिरे फिर, घन घिरे फिर,
सरसता हर ओर फैली,

और प्रति कण को मिली फिर
स्निग्ध तेरी छत्र छाया

मैं हृदय मे अग्नि लेकर
एक युग से जल रहा हूँ,
शेष उर में कुछ दया तो
आज सुन मेरी विनय भी।

छा रही कण कण अवनि का,
छा, सजनि, मेरा हृदय भी !

(५)

स्वर्ग शाभन कल्प तरु औ'
देव प्रिय मदार सुदर
कर रहे निर्विघ्न शासन
आदि युग से कवि हृदय पर,

नव रसाल, कदब ने मन
पर किया अधिकार कब से

चित्त वश में कर चुके हैं
कज, कुद, शिरीष, केसर,

निम्नतम तू, किंतु मैं तो
नम्रतम बनने चला हूँ,
आँक मेरे उर पटल पर
आज तू अपनी विजय भी !

छा रही कण कण अवनि का,
छा, सजनि मेरा हृदय भी !

कवि का गीत

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे !

(१)

काम क्या समझूँ न हो यदि
गाँठ उर की खोलने को ?
संग क्या समझूँ किसी का
हो न मन यदि बोलने को ?

जानता क्या क्षीण जीवन ने
उठाया भार कितना,

बाट मे रखता न याद
उच्छ्वास अपने तोलने को ?

हैं वही उच्छ्वास कल के
आज सुखमय राग जग मे,
आज मधुमय गान, कल के
दग्ध कंठ प्रलाप मेरे !

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे !

(२)

उच्चतम गिरि के शिखर को
लक्ष्य जब मैंने बनाया,
गर्व से उन्मत्त होकर
शीश मानव ने उठाया,

ध्येय पर पहुँचा, विजय के
नाद से ससार गूँजा,

खूब गूँजा किंतु कोई
गीत का सुन स्वर न पाया,

आज कण-कण से ध्वनित
झंकार होगी नूपुरों की,
खड्ग-जीवन धार पर अब
हैं उठे पद काँप मेरे!

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे!

(३)

गान हो जब गूँजने को
विश्व म, क्रदन करूँ मैं,
हो गमकने को सुरभि जब
विश्व में, आहें भरूँ मैं,

विश्व बनने को सरस हो
जब, गिराऊँ अश्रु मैं तब,

विश्व जीवन ज्योति जागे,
इसलिए जलकर मरूँ मैं।

बोल किस आवेश में तू
स्वग से यह माँग बैठा?—
पुण्य जब जग के उदय हा
तब उदय हों पाप मेरे।

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे।

(४)

चुभ रहा था जो हृदय में
एक तीखा शूल बनकर,
विश्व के कर में पड़ा वह
कल्प तरु का फूल बनकर,

सीखता ससार अब है
ज्ञान का प्रिय पाठ जिससे,

प्राप्त वह मुझको हुइ थी
एक भीषण भूल बनकर,

था जगत का और मेरा
यदि कभी सबध तो यह—
विश्व को वरदान थे जो
थे वही अभिशाप मेरे !

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे !

(१)

भावना के पुष्प अपनी
सूत्र-वाणी मे पिरोकर
धर दिए मैंने खुशी से
विश्व के विस्तीर्ण पथ पर,

कौन है सिर पर चढाता
कौन ठुकराता पगों से

कौन है करता उपेक्षा ?—
मुड कभी देखा न पल भर।

थी बड़ी नाजुक धरोहर,
था बडा दायित्व मुझपर,
अब नहीं चिंता इन्हें
झुलसा न दे सताप मेरे।

गीत कह इसको न दुनिया,
यह दुखों की माप मेरे।

पथभ्रष्ट

है कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर मे।

(१)

पार तम के दीख पड़ता
एक दीपक झिलमिलाता,
जा रहा उस ओर हूँ मैं
मत्त-मधुमय गीत गाता,

इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,

जानता हूँ, क्या जगत फिर
उँगलियाँ मुझपर उठाता—

मौन रहकर इस लहर के
साथ सगी बह रहे हैं,
एक मेरी ही उमगे
हो उठी हैं व्यक्त स्वर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में।

(२)

क्यों बताऊँ पोत कितने
पार है इसने लगाए ?
क्यों बताऊँ वृक्ष कितने
तीर के इसने गिराए ?

उर्वरा कितनी धरा को
कर चुकी यह क्यों बताऊँ ?

क्यों बताऊँ गीत कितने
इस लहर ने हैं लिखाए

कूल पर बैठे हुए कवि से
किसी दुख की घडी में ?
क्या नहीं पर्याप्त इतना
जानना, गति है लहर में ?

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में !

(३)

फल भरे तरु तोड डाले
शात मत लेकिन पवन हो,
वज्र घन चाहे गिराए
किंतु मत सूना गगन हो,

बढ बहा दे बस्तियों को
पर न हो जल-हीन सरिता,

हो न ऊसर देश चाहे
कटकों का एक वन हो,

पाप की ही गैल पर
चलते हुए ये पॉव मेरे
हॅस रहे है उन पगों पर
जो बॅधे हैं आज घर में।

हैं कुपथ पर पॉव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(४)

यह नहा, सुनता नहीं, जो
शख की ध्वनि आ रही है,
देव-मदिर में जनों को
साधिकार बुला रही है,

कान में आतीं अज़ानें,
मस्जिदों का यह निमत्रण,

और ही सदेश देती
किंतु बुलबुल गा रही है,

रक्त से सींची गई है
राह मदिर-मस्जिदों की,
किंतु रखना चाहता मैं
पॉव मधु सिञ्चित डगर में!

हैं कुपथ पर पॉव मेरे
आज दुनिया की नज़र मे!

(५)

है न वह व्यक्तित्व मेरा
जिस तरफ़ मेरा क़दम हो,
उस तरफ़ जाना जगत के
वास्ते कल से नियम हो,

औलिया-आचार्य बनने की
नहीं अभिलाष मेरी,

किसलिए ससार तुमको
देख मेरी चाल गम हो?

जो चले युग युग चरण ध्रुव
धर मिटे पद चिह्न उनके,
पद प्रकपित, हाय, अकित
क्या करेंगे दो प्रहर मे।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र मे।

(६)

मैं कहाँ हूँ और वह
आदर्श मधुशाला कहाँ है!
विस्मरण दे जागरण के
साथ, मधुबाला कहाँ है!

है कहाँ प्याला कि जो दे
चिर तृषा, चिर-तृप्ति मे भी!

जो डुबा तो ले मगर दे
पार कर, हाला कहाँ है!

देख भीगे होठ मेरे
और कुछ संदेह मत कर,
रक्त मेरे ही हृदय का
है लगा मेरे अधर में!

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नजर में!

(७)

सोचता है विश्व, कवि ने
कक्ष में बहु विधि सजाए,
मदिर नयना यौवना को
गोद में अपनी बिठाए,

होठ से उसके विचुंबित
प्यालियों को रिक्त करते,

झूमते उन्मत्तता से
ये सुरा के गान गाए!

राग के पीछे छिपा
चीत्कार कह देगा किसी दिन,
हैं लिखे मधुगीत मैंने
हो खड़े जीवन-समर में!

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

(८)

पाँव चलने को विवश थे
जब विवेक विहीन था मन,
आज तो मस्तिष्क दूषित
कर चुके पथ के मलिन कण,

मैं इसीसे क्या करूँ
अच्छे-बुरे का भेद, भाई,

लौटना भी तो कठिन है,
चल चुका युग एक जीवन,

हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलूँगा,
पथ सभी मिल एक होंगे
तम घिरे यम के नगर में!

हैं कुपथ पर पाँव मेरे
आज दुनिया की नज़र में!

कवि का उपहास

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(१)

तप रहा दिन दिन दिवाकर,
ज्योति जीवन ले रहा है,
रो रहा सागर अहनिश,
विश्व नौका खे रहा है,

जल रहा नभ का हृदय, निज
पथ दिशा यात्री समझता,

क्यों न इनकी वेदना पर
ध्यान कोई दे रहा है?

इन महान विभूतियों के
सामने मैं तुच्छ मानव,
क्यों लगी होने किसी को
फिर भला परवाह मेरी।

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(२)

जब कि मेरे साथ रोया
खोलकर जी घन सघन था,
अश्रु मुक्ता देख बलि-बलि
जब हुआ उडु मय गगन था,

जब कि अबुधि हो उठा
विक्षुब्ध था मेरी व्यथा से,

कर चुका नि-श्वास मेरा
विश्व-व्यापी जब पवन था,

जब कि मेरे गान-रोदन
में प्रकृति थी साथ मेरे,
मानवी सवेदना की
तब हुई क्यों चाह मेरी!

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(३)

उस जगह जल धार बहती
जिस जगह पर है तृषाकुल,
फूल हैं उस ठौर फूले
बोलती जिस ठौर बुलबुल,

कूकता पिक है जहाँपर
हैं वहाँ अमराइयाँ भी,

भेद मेरे लोक-गायन
का गया इस रीति से खुल,

बढ चले जब पाँव मेरे
भावना के पथ पर यों,
सिद्ध है कोई प्रतीक्षा
कर रहा सोत्साह मेरी।

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(४)

वृष्टि का होना सफल, यदि
एक भी तृण हो धरणि पर,
एक भी तरु मजरित यदि,
व्यर्थ कोयल का नहीं स्वर,

वायु का बहना निरतर
मैं नहीं कहता निरर्थक ...

एक सर लहरा उठे यदि,
कर उठे द्रुम एक 'मरमर',

है नहीं निष्फल कभी यह
गीत-मय अस्तित्व मेरा,
प्रतिध्वनित यदि एक उर में
एक क्षीण कराह मेरी!

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(५)

चाँद था सुदर नहीं जब
तक न था मैंने निहारा,
आँख की मेरी चमक ले
चमचमाया था सितारा,

प्रात को मेरे मुकुर-उर
में मिली बिंबित विभा निज,

निश्व ने सौंदय देखा
नित्य मेरे नेत्र द्वारा,

देख अपना रूप जग जब
गर्व करता, मैं समझता,
वह रहा इस भाँति सत्ता
भूरि भूरि सराह मेरी।

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(६)

शख की ध्वनि यदि जरूरी
झाँझ की झनकार भी है,
काठ की माला जरूरी
यदि, कुसुम का हार भी है,

शुष्क ज्ञानी चाहिए तो
चाहिए रस सिद्ध कवि भी,

सत्य आवश्यक अगर है,
स्वप्न की दरकार भी है,

स्वप्न—जिनको व्योम से मैं
बीच मन के खींच लाता,
है गड़ी यद्यपि धरा की
ओर आज निगाह मेरी।

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(७)

अग्रसर होता अधर में
कल्पना-खग पर सँवर जब,
अश्व द्वादश अंशुमाली
के न पा सकते मुझे तब,

पल चढा आकाश मे हूँ,
पल पडा पाताल मे हूँ,

चञ्चला को भी चपलता
मिल सकी मुझ-सी भला कब ?

आज मिट्टी के खिलौने
हाथ हैं मुझतक बढ़ाते,
छू नहीं सकते कभी वे
स्वप्न में भी छाँह मेरी।

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(६)

शंख की ध्वनि यदि जरूरी
झाँझ की झनकार भी है,
काठ की माला जरूरी
यदि, कुसुम का हार भी है,

शुष्क ज्ञानी चाहिए तो
चाहिए रस सिद्ध कवि भी,

सत्य आवश्यक अगर है,
स्वप्न की दरकार भी है,

स्वप्न—जिनको व्योम से मैं
बीच मन के खींच लाता,
है गडी यद्यपि धरा की
ओर आज निगाह मेरी।

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(७)

अग्रसर होता अधर में
कल्पना-खग पर सँवर जब,
अश्व द्वादश अशुमाली
के न पा सकते मुझे तब,

पल चढा आकाश मे हूँ,
पल पडा पाताल में हूँ,

चञ्चला को भी चपलता
मिल सकी मुझ-सी भला कब ?

आज मिट्टी के खिलौने
हाथ हैं मुझतक बताते,
छू नहीं सकते कभी वे
स्वप्न मे भी छाँह मेरी।

विश्व म उपहास जसिका
वह कभी थी आह मेरी।

(८)

बाहु-बल से हो तरगों
की अनी से होड लेता,
कूल हीन समुद्र में
नि शक नौका छोड देता,

बॉधता पल में हृदय का
सेतु अबर से अवनि तक,

धार को भी अति प्रबल
विपरीत उसके मोड देता,

नद न झरना, सर न सरिता,
कूप-वापी में न गिनती,
बूँद स्याही की भला क्या
रोक लेगी राह मेरी !

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(६)

बद था, बाहर हुआ दृढ
वज्र गिरि का चीरकर मैं,
रुद्ध था, द्रुत-गति हुआ
अज्ञात पथ पर पाँव धर मैं,

मौन था, मुखरित हुआ
स्वच्छदता के गात गाता,

विश्व के कारागृहों की
भित्तियों से हो निडर मैं

खोजता मेरा अजस्र प्रवाह
उर कोई उदधि-सा,
लेखनी से ले नहीं सकता
कभी जग थाह मेरी।

विश्व मे उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

(१०)

मैं हँसा जितना कि खुद पर,
कौन हँस मुझपर सकेगा ?
और जितना रो चुका हूँ,
रो नहीं निर्झर सकेगा।

मैं स्वय करता रहा हूँ
जिस तरह प्रतिरोध अपना,

मानवों में कौन मेरा,
उस तरह से कर सकेगा ?

हाथ ले बुझती मशालें
जग चला मुझको जलाने,
जल उठी छूकर मुझे वे
धन्य अंतर्दाह मेरी !

विश्व में उपहास जिसका
वह कभी थी आह मेरी।

माँझी

धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूँ मैं नाव तट पर ?

(१)

देखते ही देखते अति
वेग से कर शब्द 'सन-सन'
टूट पृथ्वी पर पडेगा
पश्चिमी नभ से प्रभजन,

भीत हो सारी दिशाएँ
घन तिमिर मे जा छिपेंगी,

जायगा भर घोर हाहा
कार से बन और उपवन,

हो विकल विह्वल तरगे
उठ गिरेंगी, गिर उठेंगी,
जल थपेड़े खा उठेगी,
काँप मेरी नाव थर थर।

धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूँ मैं नाव तट पर?

(२)

प्रात की स्वर्णिम विभा मे
और दिन की रोशनी में,
साध्य नभ की लालिमा में,
श्वेत शीतल चाँदनी मे

वायु के अनुकूल अपना
पाल फैलाता, गिराता

मैं चुका हूँ घूम गाता
स्वच्छ-जल कल्लोलिनी म,

आज मैं तम तोम आता
देखकर पीछे हटूँ यदि,
काम किस दिन आ सकेगी
जा रही जग ज्वाल अदर ?

धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूँ मैं नाव तट पर ?

(३)

ठीक, लहरा से प्रताडित
हो करेगी नाव 'मर-मर',
फेन फैलाता तटों पर
कर उठेगा नीर 'छर छर',

व्योम के सुनसान घर ३
शब्द 'सन-सन' भर उठेगा।

कर चलेगी तीर पर
फैली हुई वन-राजि 'हर हर',

किंतु इतने से भला वह
किस तरह हो मौन बैठे,
विश्व का चीत्कार गाने
जो चला है राग में भर !

धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूँ मैं नाव तट पर ?

(४)

जायगा उड पाल होकर
तार-तार विशद गगन में,
टूटकर मस्तूल सिर पर
आ गिरेगा एक क्षण में,

नाव से होकर अलग
पतवार धारा में बहेगी,

डाँड छूटेगा करा से,
पर बचा यदि प्राण तन में

तैर कर ही क्या न अपने
ध्येय को मैं जा सकूँगा,
मथ चुके हैं कर न जाने
बार कितनी विश्व-सागर !

धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूँ मैं नाव तट पर ?

(५)

आज है अस्थिर गगन
अस्थिर सलिल तल हो रहा है,
किंतु अस्थिर हो न माँझी
धैर्य अपना खो रहा है,

झेलने को इस बड़े
तूफान के झोंके झकोरे,

मानवी संपूर्ण साहस
वक्ष बीच सँजो रहा है।

अवनि अंबर की तराजू
सामने रख दी गई है,
क्यों न तोलूँ आज अपनी
शक्ति इसपर गर्व से धर ?

धूलिमय नभ, क्या इसीसे
बाँध दूँ मैं नाव तट पर ?

लहरों का निमंत्रण

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(१)

रात का अंतिम प्रहर है,
झिलमिलाते है सितारे,
वक्ष पर युग बाहु बाँधे
मैं खडा सागर किनारे,

वेग से बहता प्रभंजन
केश पट मेरे उडाता,

शून्य में भरता उदधि
उर की रहस्य-मयी पुकारे।

इन पुकारों की प्रतिध्वनि
हो रही मेरे हृदय में,
है प्रतिच्छायित जहाँपर
सिंधु का हिल्लोल-कंपन।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों मे निमंत्रण!

(२)

विश्व की सपूर्ण पीड़ा
समिलित हो रो रही है,
शुष्क पृथ्वी आँसुओं से
पाँव अपने धो रही है,

इस धरा पर जो बसी दुनिया
यही अनुरूप उसके——

इस व्यथा से हो न विचलित
नींद सुख की सो रही है,

क्यों धरणि अब तक न गलकर
लीन जलनिधि में गई हो ?
देखते क्यों नेत्र कवि के
भूमि पर जड-तुल्य जीवन !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमत्रण ?

(३)

जड जगत मे वास कर भी
जड नहीं व्यवहार कवि का,
भावनाओं से विनिर्मित
और ही ससार कवि का,

बूँद के उच्छ्वास को भी
अनसुनी करता नहीं वह,

किस तरह होता उपेक्षा
पात्र पारावार कवि का !

विश्व-पीड़ा से सुपरिचित
हो तरल बनने, पिघलने,
त्यागकर आया यहाँ कवि
स्वप्न लोकों के प्रलोभन !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमन्त्रण !

(४)

जिस तरह मरु के हृदय में
है कहीं लहरा रहा सर,
जिस तरह पावस पवन में
है पपीहे का छिपा स्वर,

जिस तरह से अश्रु आहों से
भरी कवि की निशा में

नींद की परियाँ बनातीं
कल्पना का लोक सुखकर,

सिंधु के इस तीव्र हाहा-
कार ने, विश्वास मेरा,
है छिपा रक्खा कहींपर
एक रस परिपूर्ण गायन !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमन्त्रण !

(५)

नेत्र सहसा आज मेरे
तम-पटल के पार जाकर
देखते है रत्न-सीपी से
बना प्रासाद सुदर,

है खड़ी जिसमे उषा ले
दीप कुचित रश्मियो का,

ज्योति मे जिसकी सुनहली
सिंधु कन्याएँ मनोहर

गूढ़ अर्थों से भरी मुद्रा
बनाकर गान करतीं
और करती अति अलौकिक
ताल पर उन्मत्त नर्तन!

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

(६)

मौन हो गंधर्व बैठे
कर श्रवण इस गान का स्वर,
वाद्य-यन्त्रों पर चलाते
है नहीं अब हाथ किन्नर,

अप्सराओं के उठे जो
पग उठे ही रह गए है,

कर्ण उत्सुक, नेत्र अपलक
साथ देवों के पुरंदर

एक अद्भुत और अविचल
चित्र सा है जान पड़ता,
देव बालाएँ विमानों से
रही कर पुष्प-वर्षण !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों मे निमन्त्रण !

(७)

दीर्घ उर में भी जलधि के
है नहीं खुशियाँ समातीं,
बोल सकता कुछ न उठती,
फूल बारबार छाती।

हर्ष रत्नागार अपना
कुछ दिखा सकता जगत को,

भावनाओं से भरी यदि
यह फफककर फूट जाती।

सिंधु जिसपर गर्व करता
और जिसकी अर्चना को
स्वर्ग झुकता, क्यों न उसके
प्रति करे कवि अर्घ्य अर्पण।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमन्त्रण!

(८)

आज अपने स्वप्न को मैं
सच बनाना चाहता हूँ,
दूर की इस कल्पना के
पास जाना चाहता हूँ,

चाहता हूँ तैर जाना
सामने अंबुधि पड़ा जो,

कुछ विभा उस पार की
इस पार लाना चाहता हूँ,

स्वर्ग के भी स्वप्न भू पर
देख उनसे दूर ही था,
किंतु पाऊँगा नहीं कर
आज अपने पर नियंत्रण।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

(८)

लौट आया यदि वहाँ से
तो यहाँ नव युग लगेगा,
नव प्रभाती गान सुनकर
भाग्य जगती का जगेगा,

शुष्क जडता शीघ्र बदलेगी
सरस चैतन्यता म,

यदि न पाया लौट, मुझको
लाभ जीवन का मिलेगा,

पर पहुँच ही यदि न पाया
व्यर्थ क्या प्रस्थान होगा ?
कर सकूँगा विश्व में फिर
भी नए पथ का प्रदर्शन ।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमत्रण !

(१०)

स्थल गया है भर पथों से
नाम कितनों के गिनाऊँ,
स्थान बाकी है कहाँ, पथ
एक अपना भी बनाऊँ ?

विश्व तो चलता रहा है
थाम राह बनी-बनाई,

किंतु इनपर किस तरह मैं
कवि-चरण अपने बढ़ाऊँ !

राह जल पर भी बनी है,
रूढ़ि, पर, न हुई कभी वह,
एक तिनका भी बना सकता
यहाँ पर मार्ग नूतन !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण !

(११)

देखता हूँ आँख के आगे
नया यह क्या तमाशा—
कर निकलकर दीर्घ जल से
हिल रहा करता मना सा,

है हथेली मध्य चित्रित
नीर मग्नप्राय बेड़ा!

मैं इसे पहचानता हूँ,
है नही क्या यह निराशा?

हो पड़ी उद्दाम इतनी
उर उमगें, अब न उनको
रोक सकता भय निराशा का
न आशा का प्रवचन।

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

(१२)

पोत अगणित इन तरंगों ने
डुबाए मानता मैं,
पार भी पहुँचे बहुत से—
बात यह भी जानता मैं,

किंतु होता सत्य यदि यह
भी सभी जलयान डूबे,

पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं।

डूबता मैं, किंतु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा,
हों युवक डूबे भले ही
है कभी डूबा न यौवन!

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण!

(१३)

आ रही प्राची क्षितिज से
खींचने वाली सदाएँ,
मानवों के भाग्य निर्णायक
सितारो ! दो दुआएँ,

नाव, नाविक, फेर ले जा,
है नहीं कुछ काम इसका,

आज लहरों से उलझने को
फड़कती हैं भुजाएँ,

प्राप्त हो उस पार भी इस
पार-सा चाहे अँधेरा,
प्राप्त हो युग की उषा
चाहे लुटाती नव किरण धन !

तीर पर कैसे रुकूँ मैं,
आज लहरों में निमंत्रण।

‘मेघदूत’ के प्रति

‘मेघ’ जिस जिस काल पढता
मैं स्वय बन मेघ जाता।

(१)

हो धरणि चाहे शरद की
चाँदनी म स्नान करती,
वायु ऋतु हेमत की चाहे
गगन म हो विचरती,

हो शिशर चाहे गिराता
पीत-जर्जर पत्र तरु के,

कोकिला चाहे वनों मे
हो वसती राग भरती,

ग्रीष्म का मार्तंड चाहे
हो तपाता भूमि-तल को,
दिन प्रथम आषाढ का मै
'मेघ-चर' द्वारा बुलाता !

'मेघ' जिस जिस काल पढता
मैं स्वय बन मेघ जाता !

(२)

भूल जाता अस्थिमज्जा
मासयुक्त शरीर हूँ म,
भासता बस—धूम्र सयुत
ज्योति-सलिल-समीर हूँ में,

उठ रहा हूँ उच्च भवनों के
शिखर से और ऊपर,

देखता ससार नीचे
इद्र का वर नीर हूँ मैं,

मद गति से जा रहा हूँ
पा पवन अनुकूल अपने,
सग है वक्र-पक्ति, चातक
दल मधुर स्वर गीत गाता।

'मेघ' जिस जिस काल पढता
मैं स्वय बन मेघ जाता !

(३)

झोपड़ी, गृह, भवन भारी,
महल औ' प्रासाद सुंदर,
कलश, गुंबद, स्तंभ, उन्नत
धरहरे, मीनार दृढ़तर

दुर्ग, देवल, पथ सुविस्तृत
और क्रीडोद्यान—सारे

मंत्रिता कवि कल्पना के
स्पर्श से होते अगोचर

और सहसा रामगिरि पर्वत
उठाता शीश अपना,
गोद जिसकी स्निग्ध छाया
वान कानन लहलहाता!

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता
मैं स्वयं बन मेघ जाता!

(८)

देखता इस शैल के हा
अक म रहु पूय पुष्कर,
पुण्य जल जिनको किया था
जनक तनया ने नहाकर

सग जब श्री राम के वे
थीं यहाँ पर बास करती,

देखता अकित चरण उनके
अनेक अचल शिला पर,

जान ये पद चिह्न वदित
विश्व से होते रहे है,
देख इनका शाश मैं भी
भक्ति-श्रद्धा से नवाता।

'मेघ' जिस जिस काल पढता
मैं स्वय बन मेघ जाता!

(५)

देखता गिरि की शरण में
एक सर के रम्य तट पर
एक लघु आश्रम घिरा बन
तरु लताओं से सघनतर,

इस जगह कर्तव्य से च्युत
यक्ष को पाता अकेला,

निज प्रिया के ध्यान मे जो
अश्रुमय उच्छ्वास भर भर,

क्षीणतन हो, दीनमन हो
और महिमाहीन होकर
वर्ष भर काता-विरह के
शाप के दुर्दिन बिताता।

'मेघ' जिस जिस काल पढता
मैं स्वय बन मेघ जाता!

(६)

था दिया अभिशाप अलका
यक्ष ने जिस यक्षवर को
वर्ष भर का दंड सहकर
वह गया कबका स्वघर को

प्रेयसी को एक क्षण उर से
लगा सब कष्ट भूला,

किंतु शापित यक्ष तेरा
रे महाकवि, जन्म भर को !

रामगिरि पर चिर विधुर हो
युग-युगांतर से पड़ा है,
मिल न पाएगा प्रलय तक
हाय, उसका शाप त्राता !

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता
मैं स्वयं बन मेघ जाता !

(७)

देख मुझको प्राणप्यारी
दामिना की अक म भर
घूमते उन्मुक्त नभ म
वायु के मृदु-मद रथ पर,

अट्टहास विलास से मुख
रित बनाते शून्य को भी,

जन सुखी भी क्षुब्ध होते
भाग्य शुभ मेरा सिहाकर,

प्रणयिनी भुज-पाश से जो
है रहा चिरकाल वचित
यक्ष मुझको देख कैसे
फिर न दुख म डूब जाता!

'मघ' जिस जिस काल पाता!
मै स्वय बन मेघ जाता!

(८)

देखता जब यक्ष मुझको
शैल शृंगों पर विचरता,
एकटक हो सोचता कुछ
लोचनों में नीर भरता,

यक्षिणी को निज कुशल
संवाद मुझसे भेजने की

कामना से, वह मुझे उठ
बार-बार प्रणाम करता।

कनक वलय विहीन कर से
फिर कुटज के फूल चुनकर
प्रीति से स्वागत वचन कह
भट मेरे प्रति चढ़ाता।

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता
मैं स्वयं बन मेघ जाता।

(६)

पुष्करावर्तक घना के
वंश का मुझको बताकर,
कामरूप सुनाम दे, कह
मेघपति का मान्य अनुचर,

कंठ कातर यक्ष मुझसे
प्रार्थना इस भाँति करता—

'जा प्रिया के पास ले
सदेश मेरा, बधु जलधर!

बास करती वह विरहिणी
धनद की अलकापुरी में,
शभु शिर शोभित कलाधर
ज्योतिमय जिसको बनाता।'

'मेघ' जिस जिस काल पढता
मैं स्वय बन मेघ जाता!

(१०)

यक्ष पुन प्रयाण के अनु
रूप कहता मार्ग सुखकर,
फिर बताता किस जगह पर,
किस तरह का है नगर, घर,

किस दशा, किस रूप में है
प्रियतमा उसकी सलोनी,

किस तरह सूनी बिताती
रात्रि, कैसे दीर्घ वासर,

क्या कहूँगा, क्या करूँगा,
मैं पहुँचकर पास उसके
किंतु उत्तर के लिए कुछ
शब्द जिह्वा पर न आता !

'मेघ' जिस जिस काल पढता ,
मैं स्वय बन मेघ जाता ।

(९१)

मौन पाकर यक्ष मुझको
सोचकर यह वेष धरता
सत्पुरुष की रीति है यह
मौन रहकर कार्य करता,

देखकर उद्यत मुझे
प्रस्थान के हित, कर उठाकर

वह मुझे आशीष देता—
'इष्ट देशों में विचरता,

हे जलद ! श्री वृद्धि कर तू
संग वर्षा-दामिनी के,
हो न तुझको विरह दुख जो
आज मैं विधिवश उठाता !'

'मेघ' जिस जिस काल पढ़ता
मैं स्वयं बन मेघ जाता !

गुलहज़ारा

(१)

एक आँधी पश्चिमी नभ
से चली इस ओर आइ,
जल भरे, काले, गरजते
बादलों को साथ लाई,

मुस्कराइ चंचला फिर
एक लहरा मेह बरसा,

गंध सौंधी उठ धरा से
कह गई, बरसात आई!

भूमि कर तैयार खुरपी
से बनाकर क्यारियों को,

बीज कर में, स्वप्न आँखों
में लिए माली हमारा
आज उपवन में हमारे
बो रहा है गुल हजारा।

(२)

उस दिवस हर बीज से था
फूट निकला एक अंकुर,
दूसरे दिन दो हुए दल,
जो रहे थे साथ मे जुड़,

और दो दिन बाद निकलीं
पत्तियाँ दो-दो सभी मे,

देखते ही देखते लो
हो उठी क्यारी हरित-उर

आज के सुकुमार पौधे
कल सुमन देंगे बडे हो,

हे मृगी, इनको कहीं तुम
चर न जाना जान चारा,
आज उपवन मे हमारे
उग रहा है गुल हज़ारा।

(३)

उस दिवस प्रत्येक पौधे
में मृदुल कलियाँ लगी थीं,
रूप में वे मोतियों की
लग रहीं बहनें सगी थीं,

दूसरे दिन खोल घूँघट
झाँकने जग को लगीं वे,

हर कली अपने अनोखे
रग मे, रस मे रँगी थी

हँस पड़ीं सब साथ सहसा,
हो उठे बलिहार पौधे,

सज गई क्यारी हमारी,
खुश हुआ माली हमारा ,
आज उपवन में हमारे
खिल रहा है गुल हज़ारा

(४)

चढ़ गए कुछ पुष्प मंदिर
देवता पर, देवियों पर,
पितृ गण की वेदियों पर
कुछ गए रक्खे सजाकर,

लड़कियों की साध्य क्रीडा
में, कुसुम कुछ काम आए,

राम लीला में हुए कुछ
राम लछमन पर निछावर,

(५)

बीज के जो कोष बाक़ी
थे, गया ले तोड माली,
पीत होकर अब ठिठुरती
पत्तियाँ हैं नोक वाली,

मृत्यु शैया पर पड़े अति
रुग्ण की अंतिम हँसी-सी,

यत्न करके खिल रही है
एक लघु कलिका निराली।

साँस ठंडी ले प्रकृति अब
प्राण उसके ले रही है,

हाथ से अपने उसी ने
था जिसे कलतक सँवारा
आज उपवन से हमारे
मिट रहा है गुल हज़ारा।

आकुल अतर

(बच्चन की नवीनतम रचना)

यह कवि की १९४० ४२ मे लिखित ७१ गीतो का सग्रह । कवि को अपनी पिछली रचना एकात सगीत, लिखते समय आभ हुआ था कि उसकी कई कविताएँ आतरिक अशाति को व्यक्त न कर वाह्य विह्वलता को मुखरित करती हैं। इस कारण भविष्य में उन्हों अपने गीतों को 'आकुल अतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में रर कर आतरिक और वाह्य दोनों प्रकार की विक्षुब्धता का अलग अल वाणी देने का निश्चय किया था। दोनों मालाओ के गीत इन ती वर्षों मे पत्र पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में कवि ने 'आकुल अतर' माला के अतर्गत लिखित ७१ गीतों को सग्रहीत किया है।

'एकात सगीत' से 'आकुल अतर' में कितना परिवर्तन आया है यह केवल इस बात से प्रकट हो जायगा कि 'एकात सगीत' का अतिम गीत था 'कितना अकेला आज मैं' और 'आकुल अतर' का अतिम गीत है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। भावों की किन-किन अवस्थाओं से यह परिवर्तन आया है, इसे देखना हो तो आकुल अतर' पढिए।

छद और तुक के बधनों से मुक्त केवल लय के आधार पर लिखे गए कुछ गीत हिंदी के लिए सर्वथा नवीन और सफल प्रयोग हैं।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

एकांत सगीत

(दूसरा सस्करण)

यह कवि की १९३८ ३९ में लिखित एक सौ गीतों का सग्रह है देखने में यह गीत 'निशा निमत्रण' के गीतों की शैली मं प्रतीत होते हैं परतु पद, पक्ति, तुक, मात्रा आदि म अनेक स्थानों पर स्वतत्रत लेकर कवि ने इनकी एक रूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमत्रण में मुखरि किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' ₹ साथ में नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यक नहीं होती। गीतों का क्रम रचना क्रम के अनुसार होने से कवि भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा अ किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकात में क्या देखा, क्या अनुभव किया, व सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकांत सगीत को लेकर एव में बैठ जाइए।

दूसरा सस्करण नए ठाट बाट से छपकर तैयार है।

—लीडर प्रेस, इलाहा

(४)

चढ़ गए कुछ पुष्प मंदिर
देवता पर, देवियों पर,
पितृ गण की वेदियों पर
कुछ गए रक्खे सजाकर,

लड़कियों की सांध्य क्रीडा
में कुसुम कुछ काम आए,

राम लीला में हुए कुछ
राम लछमन पर निछावर,

शेष झर झर कर अवनि को
फूल की चादर ओढ़ाते,

इस तरह से जा रहा है
मातृ भू का ऋण उतारा,
आज उपवन मे हमारे
लुट रहा है गुल हजारा।

(५)

बीज के जो कोष बाक़ी
थे, गया ले तोड माली,
पीत होकर अब ठिठुरती
पत्तियाँ हैं नोक वाली,

मृत्यु शैया पर पड़े अति
रुग्ण की अंतिम हँसी-सी,

यत्न करके खिल रही है
एक लघु कलिका निराली!

साँस ठडी ले प्रकृति अब
प्राण उसके ले रही है,

हाथ से अपने उसी ने
था जिसे कलतक सँवारा,
आज उपवन से हमारे
मिट रहा है गुल हज़ारा।

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

आकुल अतर

(बच्चन की नवीनतम रचना)

यह कवि की १९४० ४२ मे लिखित ७१ गीतो का सग्रह
कवि को अपनी पिछली रचना एकात सगीत, लिखते समय आभ
हुआ था कि उसकी कई कविताएँ आतरिक अशाति को व्यक्त न क
वाह्य विह्वलता को मुखरित करती हैं। इस कारण भविष्य में उन्ह
अपने गीतो को 'आकुल अतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में र
कर आतरिक और वाह्य दोनों प्रकार की विक्षुब्धता का अलग अल
वाणी देने का निश्चय किया था। दोनों मालाओ के गीत इन ती
वर्षों में पत्र पत्रिकाओं मे प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में कवि
'आकुल अतर' माला के अतर्गत लिखित ७१ गीतों को सग्रही
किया है।

'एकात सगीत' से 'आकुल अतर' में कितना परिवर्तन आया
यह केवल इस बात से प्रकट हो जायगा कि 'एकात सगीत' का अतिम
गीत था 'कितना अकेला आज मैं' और 'आकुल अतर' का अतिम
गीत है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। भावों की किन-किन अवस्थाओं से
यह परिवर्तन आया है, इसे देखना हो तो आकुल अतर' पढिए।

छद और तुक के बधनों से मुक्त केवल लय के आधार पर लिखे
गए कुछ गीत हिंदी के लिए सर्वथा नवीन और सफल प्रयोग हैं।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

एकांत सगीत

(दूसरा सस्करण)

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का सग्रह है। देखने में यह गीत 'निशा निमत्रण' के गीतों की शैली में प्रतीत होते हैं, परतु पद, पक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानों पर स्वतत्रता लेकर कवि ने इनकी एक रूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमन्त्रण में मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ में नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतों का क्रम रचना क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकात में क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकात सगीत को लेकर एकात में बैठ जाइए।

दूसरा सस्करण नए ठाट बाट से छपकर तैयार है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निशा निमत्रण

(तीसरा सस्करण)

यह कवि की १९३७ ३८ में लिखित एक कहानी और ए
गीतों का सग्रह है। 'निशा निमत्रण' के गीतों से बच्चन की क
का एक नया युग आरभ होता है। १३ १३ पक्तियों में लिखे ग
गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी सपूर्णता मे अग्रे
सॉनेट्स की समता करते है।

'निशा निमत्रण' के गीत सायकाल से आरभ होकर प्रात
समाप्त होते हैं। रात्रि के अधकारपूर्ण वातावरण से अपनी
भूतियों को रजित कर बच्चन ने गीतों की जो शृखला तैयार
वह आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत
दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि यह सौ गीतों का सग्रह न
सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है।

एक ओर तो इनमें प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण है दूसरी ओ
प्राकृतिक दृश्य के साथ कवि की भावनाओं का ऐसा सबध दि
गया है मानो कवि की भावनाएँ स्वय उन प्राकृतिक दृश्यों में
रूप पा गई हैं। सूर्यास्त के साथ कवि की आशाएँ टूट गई हैं। र
अधकार में कवि का शोक छा गया है। प्रभात की अरुणिमा में भ
का सकेत कर कवि ने विदा ले ली है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मँगा लीजि

—लीडर प्रेस, इला

मधुबाला

(चौथा सस्करण)

यह कवि की १६३४ ३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक मधुशाला', 'मधुपायी, 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला' 'जीवन तरुवर', "'प्यास', 'बुलबुल' 'पाटल माल' 'इस पार उस पार', 'पाँच पुकार', "'पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतो मे मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वय मस्त होकर आत्म गान करने लगी है। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छदों का स्वछद सगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रमचद जी ने लिखा था कि इनमे बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपन भाव हैं और अपनी फ़िलासफ़ी है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

म० क० ६

मधुशाला

(पाँचवा सस्करण)

यह कवि की १६३३ ३४ म लिखित १३५ रुबाइयां का सग्रह ।
हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रती
और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन
अपने कितने भावा और विचारा का इन रुबाइया में भर दि
है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभा मधुशाला उनके मुँह से र
या स्वय पढी हैं। आधुनिक खडी बोली की कोई भी पुस्तक मधुश
के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति
है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला मे स
के माध्यम से क्राति का जोरदार सदेश दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने
पश्चात् लिखा था इस कारण वे उसके बाहरी रूपक से प्रभा
अवश्य हुए हैं परतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौि
रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती

भाव, भाषा, लय और छद एक दूसरे के इतने अनुरूप
पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी उसका वैसा ही आनद
है जैसा कि हिदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जा
और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

—लीडर प्रेस, इलाहाबा

खैयाम की मधुशाला

(दूसरा सस्करण)

यह फिट्जजेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिदी रूपातर हैं जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय मे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना ससार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों मे है। अनुवाद म प्राय मूल का आनद नहीं आता, परतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दीख पड़ेगी। वे एक श द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर मे नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को हा प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृत मौलिक रचना का आनद देती है।

स्वगाय प्रमचद ने जनवरी '३६ के 'हस' में पुस्तक का आलोचना करते हुए लिखा था कि बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया, उसी रग म डूब गए हैं।' हिदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि — Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know very much like the poet astronomer of Nishapur

दूसरे सस्करण में मूल अग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

तेरा हार

(तीसरा सस्करण)

यह कवि की सन १९२९ ३० मे लिखित, स्वीकृत, आशे, नैराश्य, कीर, झड़ा, बदी, बदी मित्र, कोयल मध्याह्न, चुबन, मधुकर, दुख में, दुखों का स्वागत, आदश प्रेम, तुमसे, मधुरस्मृति दुखिया का प्यार, कलियों से, विरह विषाद, मूक प्रेम, उपहार, मेरा धम, सकोच, प्रम का आरभ, आत्म सदेह, ज म दिवस शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

यद्यपि यह बच्चन की सर्व प्रथम कृति है, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओ ने इसकी प्रशसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है। किसी कवि की अतिम कृतियाँ ही उसकी उच्चता का आभास देती हैं परतु कवि ने कहाँ से प्रारभ करके वह उच्चता प्राप्त की इसे उसकी आरभिक रचनाएँ ही बतला सकती हैं।

'विश्वमित्र' ने इसके विषय म लिखा था, 'इसके रचयिता महोदय का नाम यद्यपि हम हिंदी मे प्रथम बार देख रहे हैं तथापि कविताएँ पढने से मालूम होता है कि वे इस कला में सिद्ध हस्त हैं। कविताएँ सुदर और सरस हैं और भाव यथेष्ट परिपक्व हैं।'

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।